मानवधर्म की कहानियां

सन्तराम वत्स्य

मानव-धर्म की कहानियां

सन्तराम वत्स्य

विद्यार्थी प्रकाशन, दिल्ली

दूसरा संस्करण : १९७६

मूल्य : चार रुपये पचास पैसे

प्रकाशक : विद्यार्थी प्रकाशन
के-७१, कृष्णानगर
दिल्ली-११००५१

मुद्रक : रूपाभ प्रिंटर्स,
शाहदरा, दिल्ली-११००३२

दो शब्द

कथाओं के द्वारा धार्मिक शिक्षा, नैतिक शिक्षा और राजनीति की शिक्षा देने की परम्परा भारत में बहुत पुरानी है।

पुराण, जातक कथाएं, पंचतंत्र, हितोपदेश आदि ग्रंथ इसी उद्देश्य की पूर्ति करते हैं। हमारे देश के सन्त, महात्मा और आचार्य भी ज्ञान की गूढ़ बातों को दृष्टान्तों द्वारा जनसाधारण को समझाने में सफल हुए हैं।

इधर धर्मनिरपेक्षता का अर्थ धर्महीनता कर दिए जाने से जो अनर्थ हुआ है, उसका परिणाम हमारे सामने है। रही-सही कमी को हत्या, डकैती और जासूसी उपन्यासों ने पूरा कर दिया है। घटिया फिल्मों ने भी हमारे जन-मानस को बिगाड़ने में बहुत सहायता की है।

इन सारे धक्कों को झेलने के लिए सुदृढ़ चरित्र की आवश्यकता है। यद्यपि चरित्र मूलतः घर, पाठशाला और समाज के परिवेश में ही निर्मित होता है पर सत्साहित्य भी चरित्र-निर्माण का महत्त्वपूर्ण घटक है।

सद्गुणों के विकास की प्रेरणा देना सदा ही महत्त्वपूर्ण कार्य रहा है। आज इसका महत्त्व और भी अधिक है। ये कहानियां इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रस्तुत की जा रही हैं।

इनकी भाषा सरल सुबोध है। ये बिना किसी की सहायता के पढ़ी जा सकती हैं। रेखाचित्रों ने इन्हें और भी प्रभावपूर्ण बना दिया है।

आशा है कि ये कहानियां चाव से पढ़ी जाएंगी और वांछित प्रभाव डालेंगी।

—लेखक

क्रम

कर्मगति टारे नाहीं टरै	५
बहादुर शमशेर	१७
अंगुलिमाल	२३
कच और देवयानी	२९
जवाब लाजवाब	३८
तपोदत्त की भूल	४२
जैसी करनी, वैसी भरनी	४५
खोया ऊंट	४९

कर्मगति टारे नाहीं टरै

केरल प्रदेश में, बहुत पहले मेधावी नाम का राजा राज्य करता था। उसका एक ही पुत्र था, जिसका नाम था चन्द्रहास। जन्म से ही चन्द्रहास के एक पांव में छह अंगुलियां थीं। उन दिनों पांव में छह अंगुलियां होना अच्छा नहीं माना जाता था। इसलिए चन्द्रहास के जन्म पर उसके माता-पिता चिन्ता में डूब गए। उन्हें लगा कि इस बालक का भाग्य अच्छा नहीं है और हमारे राज्य पर कोई-न-कोई आपत्ति आने वाली है। इस तरह राजकुमार चन्द्रहास के जन्म पर राजमहल में प्रसन्नता के स्थान पर उदासी छा गई।

राजा मेधावी ने ज्योतिषियों को बुलाकर राजकुमार की जन्म-कुण्डली बनाने को कहा। ज्योतिषियों ने जन्म-कुण्डली बनाकर बताया कि राज्य पर कोई विपत्ति आने वाली है। पर साथ ही यह भी कहा कि राजकुमार भगवान् का बड़ा भक्त होगा। अनेक विपत्तियों को झेलता यह तीन राज्यों का स्वामी बनेगा और इसकी प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैलेगी।

राजकुमार चन्द्रहास अभी दो-ढाई वर्ष का ही हुआ था कि राज्य पर शत्रु राजा ने आक्रमण कर दिया। राजा मेधावी के पास बड़ी सेना थी और वह स्वयं भी बड़ा पराक्रमी था। उसने शत्रु-सेना का खूब सामना किया। मेधावी की सेना लड़ते-लड़ते कट मरी। राजा मेधावी भी मारा गया। राजा के मारे जाने पर रानी ने भी सोचा कि अब जीकर क्या करूंगी। उसने राजकुमार चन्द्रहास को उसकी धाय को सौंपते हुए कहा, "धाय ! मैं राजा के साथ ही चिता पर चढ़कर सती हो जाऊंगी। चन्द्रहास की रक्षा और पालन-पोषण का भार अब तुम्हारे ही ऊपर है। यह अब तक भी तुम्हारे ही दूध पर

पला है। तुम इसे अपना ही बेटा समझकर पालना।"

धाय ने रानी को सती होने से बहुत रोका पर जब रानी न मानी तो उसने राजकुमार को पालने का भार स्वीकार कर लिया। उसने रानी को विश्वास दिलाया कि मैं अपने जीते-जी उसका बाल भी बांका नहीं होने दूंगी।

बेचारी धाय चन्द्रहास को गोद में उठाकर राजधानी से निकल पड़ी। शत्रु राजा ने राज्य पर अधिकार कर लिया और वह राजपुत्र चन्द्रहास को खोजने लगा ताकि उसे मारकर मेधावी के वंश को ही समाप्त कर दे। बेचारी धाय चन्द्रहास को अपनी छाती से चिपकाए और आंचल से ढंके लुक-छिपकर यात्रा करती हुई कुन्तलपुर नगर में जा पहुंची। रात को वह किसी धर्मशाला में सो रहती और दिन निकलने पर भीख मांगने लगती। इसी तरह उसके दिन कटने लगे।

एक बार कुन्तलपुर राज्य के प्रधानमंत्री धृष्टबुद्धि ने बालक चन्द्रहास को धाय के साथ भीख मांगते देखा। चन्द्रहास के राजकुमारों जैसे चेहरे को देखकर प्रधानमंत्री ने सोचा कि यह तो कोई बड़ा होनहार बालक है। धाय को उसने बालक की मां समझा। दोनों पर प्रधानमंत्री को बड़ी दया आई। प्रधानमंत्री ने दोनों को अपने महल में बुला लिया। धाय मंत्री के घर का काम-काज करने लगी। चन्द्रहास दिनभर महल में सेवकों के बालकों के साथ खेलता रहता। इसी तरह दिन बीतते गए और चन्द्रहास छह वर्ष का हो गया।

एक दिन प्रधानमंत्री ने बहुत-से ब्राह्मणों को भोजन के लिए महल में बुलाया। वहां चांद जैसे चन्द्रहास को खेलते देखकर ब्राह्मण सोचने लगे कि यह बालक कौन है? बात यह थी कि चन्द्रहास का चेहरा तो राजकुमारों जैसा था किन्तु उसकी वेश-भूषा बहुत ही साधारण थी, जैसी कि घर के नौकरों-चाकरों के बच्चों की होती है।

जब ब्राह्मण भोजन कर चुके और बैठ गए तो मंत्री ने अपनी बेटी विषया की जन्म-कुण्डली राजपुरोहित को दिखाते हुए पूछा, "पंडितजी, इस बिटिया के

ग्रह देखकर यह तो बताइए कि इसे कैसा घर-वर मिलेगा ?"

चन्द्रहास के राजकुमारों जैसे रूप को देखकर और विषया से कुछ बड़ी अवस्था का होने के कारण राजपंडित ने कहा, "यह बालक आपकी कन्या के लिए उपयुक्त वर है। हमारे विचार से तो इन दोनों की जोड़ी ठीक रहेगी।"

मंत्री को राजपंडित की यह बात ठीक नहीं लगी। कहां यह भिखारिन का बेटा और कहां प्रधानमंत्री की बेटी ! मंत्री ने दक्षिणा देकर ब्राह्मणों को विदा किया।

कई दिनों बाद कुन्तलपुर के राजा ने एक बड़ा यज्ञ किया। यज्ञ की समाप्ति

पर राजमहलों के पास से कीर्तन करते बालकों की एक टोली जा रही थी। चन्द्रहास इस टोली का अगुआ था। राजा ने सोचा कि सम्भवतः ये बालक कुछ चाहते होंगे। राजा ने टोली के अगुआ चन्द्रहास को बुलाकर पूछा, "बोलो तुम्हें क्या चाहिए ?"

"कुछ भी नहीं। हम तो कीर्तन करते जा रहे थे।" चन्द्रहास ने उत्तर दिया।

वहां उपस्थित सभी लोग इस उत्तर को सुनकर प्रसन्न हुए। राजपुरोहित गालव मुनि ने चन्द्रहास के सिर पर हाथ फेरा और आशीर्वाद दिया। चन्द्रहास ने उनके चरणों में प्रणाम किया।

चन्द्रहास को ध्यानपूर्वक देखने पर मुनि गालव को उसके अंगों में चक्रवर्ती जैसे लक्षण दिखाई दिए। राजा के कोई पुत्र नहीं था। राजपुरोहित ने इस बालक को पढ़ाने-लिखाने का प्रबन्ध कर देने को कहा। उन्होंने कहा, "जब यह पढ़-लिखकर योग्य हो जाएगा तो राजकुमारी चम्पकमालिनी का इसके साथ विवाह कर देना और इसे ही राज्य का उत्तराधिकारी बना देना।"

राजा नें मन में सोचा कि इसके कुल-शील का तो कुछ पता है नहीं। फिर मुनि की बात कैसे मानी जाए। फिर सोचा कि इसीसे इसके कुल आदि के बारे में पूछताछ कर ली जाए। राजा ने पूछा, "बेटा तुम्हारे माता-पिता कौन हैं और कहां हैं ?"

चन्द्रहास बोला, "मैं केवल मां को जानता हूं। वे प्रधानमंत्री के महल में काम करती हैं।"

राजा ने मन में सोचा कि इसकी मां को बुलाकर सारी बात का पता लगाना चाहिए।

मंत्री की दासी, चन्द्रहास की धाय ने राजा को सारी बात ठीक से बता दी। अब राजा को विश्वास हो गया कि पुरोहित जी जो कुछ कह रहे थे, वह ठीक ही है।

राजा ने चन्द्रहास की शिक्षा का भार मुनि गालव को सौंप दिया। ज्यों ही गालव मुनि चन्द्रहास को लेकर चले कि राजकुमारी चम्पकमालिनी आ निकली। राजकुमारी बोली, "पुरोहितजी इसे आप मत ले जाइए। यह यहीं महलों में रहेगा और हम मिलकर खेला करेंगे।" महलों में राजकुमारी के साथ खेलने वाला कोई दूसरा बहिन-भाई तो था नहीं। वह चन्द्रहास का हाथ पकड़कर ले चली और वे दोनों पुष्पवाटिका में खेलने लगे।

प्रधानमंत्री धृष्टबुद्धि की सलाह के बिना ही राजा ने चन्द्रहास को अपना लिया था। जब उसे पता लगा तो उसकी आशाओं पर पानी फिर गया। बात यह थी कि कुन्तलपुर का सारा राज-काज प्रधानमंत्री ही देखता था। राजा तो भजन-पूजा में लगा रहता था। मंत्री के दो पुत्र थे—मदन और अमल तथा विषया नाम की एक कन्या थी। मंत्री ने सोच रखा था कि राजा के कोई लड़का तो है नहीं। एक लड़की है, उसका विवाह अपने बड़े पुत्र से करके, अपने पुत्र को राज्य का उत्तराधिकारी बना दूंगा। चन्द्रहास को योग्य बनाकर राजकुमारी का ब्याह उसके साथ होने की बात निश्चित हो जाने से मंत्री की सोची हुई योजना बेकार हो गयी। इसी बात का उसे दुःख था। पर यह मंत्री चुप बैठने वाला नहीं था। उसने निश्चय किया कि चन्द्रहास को मरवाकर अपनी योजना को सफल बनाऊंगा। मंत्री ने पहले तो राजा और मुनि गालव को अपना पहले का निश्चय बदलने के लिए तरह तरह की बातें समझाईं पर जब वे नहीं माने तो चन्द्रहास को मरवा डालने का निश्चय किया।

एक दिन चन्द्रहास बाल-मंडली में खेल रहा था। मंत्री ने एक बालक को भेजकर उसे अपने पास बुलाया। जब चन्द्रहास मंत्री के महल में पहुंचा तो वहां मंत्री ने पहले से ही चन्द्रहास को मरवाने के लिए आदमी बुलवाए हुए थे। इन हत्यारों को मुंह-मांगा इनाम देने का वायदा धृष्टबुद्धि ने कर रखा था।

ज्योंही चन्द्रहास महल में पहुंचा हत्यारों ने उसे पकड़ लिया और मुंह में

कपड़ा ठूंस दिया जिससे शोर न मचा सके। वे उसे छिपाकर एक घने जंगल में ले गए। जब हत्यारे तलवार से चन्द्रहास का सिर काटने को तैयार हुए तो चन्द्रहास ने उनसे कहा, "पहले मुझे भगवान् मे प्रार्थना कर लेने दो। फिर मेरा सिर काटना।" हत्यारे मान गए। चन्द्रहास को मौत से न डरते हुए भगवान् की प्रार्थना करते देखकर हत्यारों को पहले तो आश्चर्य हुआ और फिर इस भोले-भाले बालक के प्रति उनके मन में दया उमड़ पड़ी। इस निरपराध बालक को मारना उन्हें अच्छा नहीं लगा। उन्होंने उसके पांव की छठी उंगली काटकर मंत्री को दिखाने के लिए अपने पास रख ली और चन्द्रहास को जीवित छोड़ दिया। हत्यारे तो जंगल से निकल आए पर चन्द्रहास को वहीं छोड़ आए। चन्द्रहास को तो डर छू भी नहीं गया था। वह भगवान् का नाम जपता वहीं बैठा रहा।

कुन्दनपुर राज्य के अधीन एक छोटा-सा राज्य था, चन्दनपुर। यह जंगल चन्दनपुर राज्य की सीमा में था। चन्दनपुर का राजा कुलिदक उस दिन घोड़े पर सवार होकर इसी जंगल में शिकार खेलने आया हुआ था। वह शिकार की खोज करता वहीं आ पहुंचा जहां चन्द्रहास बैठा था। बालक चन्द्रहास को इस घनघोर जंगल में अकेला देखकर राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। कुलिदक चन्द्रहास के पास जाकर घोड़े से उतर पड़ा। उसने चन्द्रहास को भी घोड़े पर बिठा लिया और शिकार खोजना छोड़कर महलों को लौट पड़ा। वह रास्ते में सोचता जा रहा था कि भगवान् की लीला बड़ी विचित्र है। मेरे कोई संतान नहीं थी। अब भगवान् ने यह सुन्दर बालक कृपा करके मुझे दे दिया।

कुलिदक की रानी ने जब इस बालक को देखा तो उसकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। उसने चन्द्रहास को छाती से लगा लिया और उसे चूमने लगी।

राजा-रानी ने पक्का निश्चय कर लिया कि हम इस बालक को गोद लेंगे

और राज्य का उत्तराधिकारी बनाएंगे। पुत्र गोद लेने के समारोह की तैयारियां होने लगीं। राजा ने राजसभा बुलाई और बताया कि यह बालक मुझे जंगल में मिला है। आप सब जानते ही हैं कि मेरे कोई संतान नहीं है। यदि सभा स्वीकृति दे तो मैं इस बालक को गोद ले लूं और अपना उत्तराधिकारी बनाऊं।

सभी राजसभासदों ने प्रसन्नतापूर्वक इस बालक को गोद लेने की स्वीकृति दे दी। फिर बड़े समारोह के साथ पुत्र गोद लेने की विधि पूरी कराई गयी। ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा और दीन-दुखियों को खूब धन बांटा गया।

अब फिर चन्द्रहास की राजकुमारों के योग्य शिक्षा प्रारम्भ हुई। चन्द्रहास ज्यों-ज्यों बड़ा होता गया, रूप-यौवन और विद्या-बुद्धि में सबसे बढ़-चढ़कर निकला। अस्त्र-शस्त्र के साथ-साथ सारे शास्त्रों का भी उसने अच्छी तरह अध्ययन किया। घुड़सवारी और तलवार चलाने में तो उसकी कोई भी बराबरी नहीं कर सकता था।

उसकी विद्या-बुद्धि और व्यवहार-कुशलता से प्रसन्न होकर राजा ने उसे युवराज बना दिया। अब वह राज-काज में भी राजा का हाथ बंटाने लगा। धीरे-धीरे उसने सारा राज-काज संभाल लिया। राजा निश्चिंत होकर ईश्वर के भजन-पूजन में अपना समय बिताने लगा।

चन्दनपुर राज्य कुन्तलपुर राज्य के अधीन था। इसलिए प्रतिवर्ष दस हज़ार मोहरें कर के रूप में कुन्तलपुर के राजा को देता था। इस बार दस हज़ार मोहरें भेजने में कुछ देर हो गई थी। इसलिए मंत्री धृष्टबुद्धि ने, चन्दनपुर के राजा कुलिंदक के विरुद्ध अपने राजा के कान भरने शुरू किए। राजा तो राज-काज मंत्री पर छोड़कर पूजा-पाठ में लगा रहता था, इसलिए मंत्री को मनमानी करने का अवसर मिल गया। मंत्री धृष्टबुद्धि चन्दनपुर के अधीन राज्य को हड़पने का निश्चय कर चुका था क्योंकि चन्दनपुर के राजा के कोई संतान तो थी नहीं और राजा की मृत्यु के बाद कुन्तलपुर राज्य का

उस पर अधिकार हो जाता। पर पुत्र को गोद लेने के समाचार से धृष्टबुद्धि की यह आशा भी धूल में मिल गई। मंत्री धृष्टबुद्धि को अच्छा बहाना मिल गया। उसने सोचा कि यदि कर की राशि मिलने में जरा भी कठिनाई हुई तो सेना को आक्रमण करने की आज्ञा दे दूंगा और राज्य पर अधिकार कर लूंगा।

राजा कुलिन्दक को पता लगा कि मंत्री धृष्टबुद्धि सेना सहित आ रहा है तो वह उसकी अगवानी करने के लिए आगे गया। खूब आदर-सत्कार किया और कर की राशि दस हज़ार मोहरों के अतिरिक्त और भी बहुत-सी राशि भेंट में दी। राजा कुलिन्दक ने युवराज का परिचय मंत्री धृष्टबुद्धि से कराया और कहा कि राज्य के उत्तराधिकारी पर मंत्री महोदय पहले की तरह ही कृपा दृष्टि रखें।

फिर कुलिन्दक ने जंगल में बालक के मिलने की कहानी सुनाई। धृष्टबुद्धि समझ गया कि यह तो वही बालक है जिसे मारने के लिए उसने हत्यारे नियुक्त किए थे। उसे ज्योतिषियों की बात याद आ गई। पर वह भी हार मानने वाला नहीं था। उसने दोबारा चन्द्रहास को मरवाने की युक्ति सोच निकाली। उसने राजा कुलिन्दक से कहा कि आपने हमारे महाराज की स्वीकृति लिए बिना ही पुत्र गोद ले लिया, यह ठीक नहीं किया। इसलिए अब आप युवराज को हमारे महाराज के पास भेजकर उनकी स्वीकृति और कृपा-दृष्टि प्राप्त कर लीजिए।

राजा कुलिन्दक को भी यह बात ठीक लगी। चन्द्रहास कुन्तलपुर के महाराज के पास जाने को तैयार हुआ तो धृष्टबुद्धि ने एक चिट्ठी उसके पास दी और कहा कि यह चिट्ठी मेरे बड़े पुत्र मदन को दे देना। चन्द्रहास पत्र लेकर घोड़े पर सवार होकर कुन्तलपुर की ओर चल पड़ा।

कोई तीसरे पहर चन्द्रहास कुन्तलपुर नगर के बाहर जा पहुंचा। नगर के बाहर एक सुन्दर बाग था। चन्द्रहास ने यहां कुछ देर सुस्ताने का निश्चय

किया। बाग में एक तालाब था। चन्द्रहास ने उस तालाब में घोड़े को पानी पिलाया और एक वृक्ष से बांध दिया। स्वयं हाथ-मुंह धोकर और पानी पीकर लेट गया। घोड़े की पीठ पर देर तक बैठे रहने की थकान तो थी ही, उसे लेटते ही नींद आ गई।

राजकुमारी चम्पकमालिनी और मंत्री की बेटी विषया अपनी सहेलियों के साथ बाग में आई हुई थीं। विषया टहलती हुई, जहां चन्द्रहास सोया पड़ा था, वहां आ पहुंची। स्वस्थ और सुन्दर युवराज चन्द्रहास को देखकर विषया मोहित हो गई। वह इस युवक का नाम-धाम जानना चाहती थी। इतने में उसकी दृष्टि चिट्ठी पर पड़ी। उसने चुपके से चिट्ठी जेब से निकाल ली और खोलकर पढ़ने लगी। उसमें लिखा था।

स्वस्ति श्री प्रिय पुत्र मदन देखत यह पाती।
विष दे देना जिससे हो शीतल मम छाती।

विषया सोचने लगी कि इस रूपवान् राजकुमार को पिताजी ने विष देने की बात क्यों लिखी है? कोई कारण उसकी समझ में नहीं आया। फिर उसने सोचा कि पिताजी सम्भवतः मेरा नाम विषया लिखना चाहते थे और भूल से 'या' अक्षर छूट गया और 'विषया' के बदले 'विष' बन गया। उसने अपनी आंख के काजल से 'या' बढ़ाकर भूल सुधार दी। अब तो पत्र का अर्थ कुछ का कुछ हो गया। उसने पत्र को सावधानी से बंद करके वहीं का वहीं रख दिया। इसके बाद वह वहां से चुपचाप खिसककर सहेलियों में जा मिली।

दिन डूबने से पहले ही चन्द्रहास जाग गया और घोड़े पर चढ़कर मंत्रीजी के महल में जा पहुंचा। पत्र उसने मंत्री-पुत्र मदन के पास दे दिया। मदन ने पत्र पढ़ा तो बहुत प्रसन्न हुआ। उसने मां को सारी बात बताई और चन्द्रहास भी दिखा दिया। मां-बेटे दोनों चन्द्रहास को देखकर प्रसन्न हुए। ज्योतिषी को बुलाकर विवाह का मुहूर्त निश्चित करवाया। बड़ी धूम-धाम के साथ विषया का विवाह हो गया।

जब धृष्टबुद्धि चन्दनपुर से लौट कर आया तो पता लगा कि विषया का विवाह चन्द्रहास के साथ हो चुका है। उसने क्या सोचा था और हो क्या गया! पर वह दुष्ट भाग्य के सामने अब भी हार मानने को तैयार नहीं था। उसने मन में कहा, मेरी बेटी भले ही विधवा हो जाए, पर चन्द्रहास को मारकर ही दम लूंगा।'

नगर से दूर एकान्त पहाड़ो की चोटी पर देवी का मन्दिर था। धृष्टबुद्धि ने वहां एक हत्यारे को यह कहकर बिठा दिया कि आज शाम को जो भी यहां पूजा करने आए, उसका सिर धड़ से अलग कर देना और चन्द्रहास से कहा, "बेटा हमारे कुल की रीति है कि विवाह के बाद वर अकेला देवी के मंदिर में जाकर भेंट चढ़ाता है। इसलिए तुम भी आज शाम को देवी मंदिर में जाकर भेंट चढ़ा आओ।"

चन्द्रहास आज्ञानुसार भेंट चढ़ाने चल पड़ा। उधर कुन्तलतुर के राजा ने सोचा कि मैं भी क्यों न अपनी बेटी राजकुमारी चम्पकमालिनी का विवाह चन्द्रहास के ही साथ कर दूं और उसे ही राज्य का उत्तराधिकारी बनाकर निश्चिन्त हो जाऊं। महाराज ने मंत्री-पुत्र मदन को आज्ञा दी कि तुरंत चन्द्रहास को बुलाकर मेरे पास लाओ। राजा की आज्ञा मिलते ही मदन चन्द्रहास को बुलाने चला तो वह देवी-मंदिर में भेंट चढ़ाने जाता उसे मार्ग में ही मिल गया।

मदन ने भेंट-पूजा का सामान चन्द्रहास के हाथ से ले लिया और कहा, "आपके बदले मैं ही देवी के मंदिर में भेंट चढ़ा आता हूं। आप शीघ्र हमारे महाराज के पास चले जाइए। वे इसी समय आपसे मिलना चाहते हैं।"

बात यह थी कि गालव मुनि और राजकुमारी चम्पकमालिनी दोनों ने चन्द्रहास को पहचान लिया था और राजा को भी बता दिया था कि यह वही बालक है, जिसे आप अपने राज्य का उत्तराधिकारी बनाना चाहते थे।

चन्द्रहास के पहुंचने से पहले ही विवाह और राज-तिलक की पूरी तैयारी हो चुकी थी। इसलिए दोनों कार्य सम्पन्न हो गए। इतनी जल्दी दोनों काम

करने का एक कारण यह भी था कि महाराज संसार से विरक्त हो चुके थे और राज्य अपने उत्तराधिकारी को सौंप कर तुरंत संन्यास ले लेना चाहते थे। इस सारी कार्यवाही में मंत्री से कोई सम्मति नहीं ली गई।

दूसरे दिन प्रातः मंत्री धृष्टबुद्धि को पता लगा कि महाराज ने राजकुमारी चम्पकमालिनी का विवाह भी चन्द्रहास के साथ कर दिया और राज्य का उत्तराधिकारी भी उसे ही बना दिया तो उसे एक बार फिर अपनी योजना के विफल होने का बड़ा दुःख हुआ। वह चुपचाप देवी मंदिर की ओर गया ताकि पता लगाए कि वहां रात क्या हुआ !

चन्द्रहास ने जब देखा कि ससुर साहब घबराए हुए दौड़ते चले जा रहें हैं तो वह भी पीछे हो लिया।

धृष्टबुद्धि ने देवी-मंदिर के द्वार पर अपने बड़े पुत्र मदन का सिर धड़ से कटा पड़ा देखा। वह भी वहां गिर पड़ा और मर गया। कुछ देर बाद चन्द्रहास पहुंचा, उन दोनों को मरा पड़ा देखकर वह बहुत ही दुखी हुआ। वह भी तलवार से अपना सिर काटकर प्राण देने को तैयार हो गया। तब देवी ने साक्षात् प्रकट होकर उसके हाथ से तलवार छीन ली। फिर चन्द्रहास की प्रार्थना पर देवी की कृपा से मदन और मंत्री धृष्टबुद्धि दोनों जीवित होकर उठ खड़े हुए।

चन्द्रहास कुन्तलपुर के राजसिंहासन पर बैठा तो उसकी धाय राजसभा में आई। चन्द्रहास सिंहासन से उठ खड़ा हुआ और उसके चरण छुए। धाय अपने पाले हुए राजपुत्र को राजसिंहासन पर बैठा देखकर बहुत प्रसन्न हुई। फिर वह चन्द्रहास से बोली, "बेटा ! तुम्हें राजगद्दी पर बैठा देखकर मुझे आज जितनी प्रसन्नता हो रही है, उसे मैं शब्दों में व्यक्त नहीं कर सकती। पर मुझे एक बात कांटे की तरह चुभ रही है। तुम्हारे पिता का राज्य आज भी शत्रुओं के अधिकार में है। जब तक तुम उस पर अधिकार नहीं कर लेते, मुझे चैन नहीं पड़ेगा।" फिर धाय ने उसके वास्तविक माता-पिता और राज्य की सारी कहानी

कह सुनाई।

चन्द्रहास ने धाय की आज्ञानुसार अपने पिता के राज्य को शत्रुओं से वापस लिया और इस तरह वह केरल, कुन्तलपुर और चन्दनपुर का राजा बन गया।

उसने धाय मां का मां की ही तरह सदा सम्मान किया और उसकी आज्ञा मानता रहा।

बहादुर शमशेर

दिसम्बर का आरम्भ था। काठमांडू से लगभग ३० मील उत्तर पश्चिम में एक छोटे-से कस्बे पाटन का स्कूल ! बालक शमशेर उत्साह और उमंग से उछलता-कूदता अपने विद्यालय के कमरे से बाहर अपने मित्रों को यह सूचना देने आया कि कल विद्यालय की छुट्टी रहेगी क्योंकि विद्यालय का सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ी देवेन्द्र राणा क्षेत्रीय खेल-कूद प्रतियोगिता में प्रथम आया है। उसने अपने मित्र मनबहादुर से कहा, "मैं चाहता हूं कि हम सब मित्र-गण महादेव की चोटी पर चढ़ाई करें !" मनबहादुर शमशेर से आश्चर्य से बोला, "क्या ? इतने भयानक रास्ते पर चढ़ाई और वह भी सर्दी के मौसम में ?" शमशेर ने बड़ी लापरवाही से उत्तर दिया, "क्या रखा है इन बातों में, हमारे पास सारे दिन का लम्बा समय होगा !"

"तो क्या हम और तुम दोनों ही जायेंगे ?"

"नहीं ! हमें कीर्ति, दानसिंह और कर्ण को भी इसकी सूचना देनी है।"

अगली सुबह निश्चित योजना के अनुसार प्रातः अल्पाहार के पश्चात् पांचों बाल-पर्वतारोहियों का दल उत्साहपूर्वक दुर्गम चढ़ाई पर रवाना हो गया। ये लोग पहाड़ की उस ढलान पर ऊंचे चढ़ते ही चले गए। दिसम्बर माह की शीतल पवन इन उत्साही किशोरों में और अधिक स्फूर्ति का संचार कर रही थी।

इस टोली का प्रत्येक सदस्य सबसे पहले चोटी पर पहुंचने के लिए उत्सुक था क्योंकि इस मार्ग से चढ़कर पहाड़ की चोटी पर जाना बड़ा वीरतापूर्ण कार्य समझा जाता था। चढ़ते-चढ़ते शीघ्र ही बच्चों की सांस फूल गई। थोड़ी देर बाद बेचारा कर्ण थक गया। वह आगे चलने में असमर्थ था। दानबहादुर कर्ण को

लेकर नीचे उतर आया। शमशेर, कीर्ति और मनबहादुर ने शेष यात्रा उसी उमंग और उत्साह के साथ आरम्भ कर दी। चढ़ते-चढ़ते वे सब ऐसी नुकीली चट्टानों के समूह में पहुंच गए जहां पर गहरे चमकदार रंग की काई जमी हुई थी।

एक समतल स्थान पर पहुंचकर इस दल ने कुछ देर विश्राम किया। वहां से दूर बहुत नीचे छोटी-छोटी पहाड़ियों पर सीढ़ीनुमा ढलवां खेत, बिखरे-बिखरे घर और पेड़ सब छोटी-छोटी लहर और बिन्दु जैसे लग रहे थे।

चढ़ते-चढ़ते जब तीसरा पहर आया तो उन्होंने पश्चिम की ओर से आकाश में सफेद बादलों के समूह को उमड़ते हुए देखा।

शमशेर ने साथियों से कहा, "देखो! ये बादल उमड़ते-घुमड़ते चले आ रहे हैं, यदि ये साफ न हुए तो क्या तुम उतरते समय रास्ता देख पाओगे?"

कीर्ति ने उत्तर दिया, "भय्या! मैं तो इस विषय में कुछ भी नहीं जानता। शायद तुम्हारी बात ठीक हो!"

शमशेर ने बड़ी धीरता और आत्मविश्वास से उन्हें ढाढ़स बंधाते हुए कहा, "खैर कोई बात नहीं, हमें शीघ्र ही इन काई, नमी और घास वाली चट्टानों से ऊपर चढ़ना चाहिए, यदि हम यहीं पर ठहरे रहे तो शीघ्र ही धुंध और कोहरे से घिर जाएंगे।"

तीनों साहसी किशोर शीघ्र ही उठे और फिसलन वाली घाटी पर आ गए। देखते ही देखते घने सफेद बादलों ने उन्हें घेर लिया।

प्रातःकाल जब ये बाल पर्वतारोही स्कूल होस्टल से चले थे तो अपने अध्यापक को केवल इतना ही सूचित किया था कि हम लोग एक लम्बे भ्रमण के लिए जा रहे हैं। अतः शाम के भोजन के लिए उपस्थित न हो सकेंगे।

प्रातःकाल जब वे अपनी यात्रा पर रवाना हुए थे तब दिन इतना साफ था कि धुंध और तूफान की कल्पना भी नहीं हो सकती थी।

अब बे एक भयावह स्थिति में फंस गए थे। बादलों में लिपटे हुए ये तीनों

निराश बालक अपने एक गज आगे भी नहीं देख सकते थे। एक बार कीर्ति इन दोनों से आगे निकल गया तब केवल उसकी आवाज़ के सहारे ही ये उस तक पहुंच सके थे। महादेव पर्वत के एक ओर सामने चट्टान की दीवार खड़ी थी, एक ओर लहरदार सीढ़ियों के रूप में मैदान की ओर रास्ता उतरता था। एक स्थान पर जहां गहरे दर्रे के किनारे चट्टानों की दीवार थी, उसके सामने घाटी की ओर ढलवां टीला था। उस ढलवा टीलेनुमा मैदान का किनारा धीरे-

धीरे इतना संकरा होता चला गया था कि उस पर से एक आदमी भी बड़ी कठिनाई से गुजर सकता था। इस नुकीले किनारे का नाम धार था। धार के आगे गहरा और भयावह खड्ड था।

दूसरी ओर दर्रे की ओर भूमि बड़ी ढलवां और निर्जन थी।

वातावरण की गम्भीरता को कम करने की इच्छा से मनबहादुर ने शमशेर से पूछा, "क्या तुम निश्चयपूर्वक कह सकते हो, हम सही रास्ते पर चल रहे हैं?"

"हां, निश्चित रूप से।" शमशेर ने अपनी जेब से एक छोटी-सी कम्पास निकालकर दिशाओं का पता लगाया। उसने बताया, "हमारे दाईं ओर धार है और बाईं ओर पहाड़ है किन्तु..."

कीर्ति बादलों की इस धुंध में अधिक ठंड अनुभव कर रहा था। कहने लगा, "अब चार बजने को हैं। शीघ्र ही चारों ओर अन्धकार फैल जाएगा और

हम कल सुबह तक यहां ठहर नहीं सकते ।

अचानक ही शमशेर सबको सतर्क करता हुआ चीखा, "रुको ! मुझे कहीं दरार के फटने की आवाज सुनाई दे रही है ?" उसने एक भारी चट्टान का टुकड़ा आगे लुढ़काया । सब किशोर उस पत्थर के लुढ़कने की आवाज को सहमे-सहमे सुनने लगे ।

वह पत्थर एक बार रुका, इसके बाद उन्होंने सुना कि अन्य बहुत-सी चट्टानें भयानक शोर करती हुई उसके साथ नीचे की ओर लुढ़कने लगीं और आपस में टकराकर पत्थरों के टूटने की आवाजें आने लगीं । ज्योंही लुढ़कती हुई चट्टानें दरार पर आयीं, सारे पहाड़ पर ध्वनि की गूंज सुनाई देने लगी, अर्थात् सामने की दरार का स्पष्ट आभास हो गया । शमशेर अपने दोनों साथियों को पकड़कर पीछे की ओर खींचता हुआ बोला, "हे भगवान ! हम तो इस दरार के एकदम किनारे पर ही खड़े हैं । अब मैं तुम्हें और आगे जाने नहीं दूंगा ।"

शमशेर बोला, "धुंध हटने तक हमें इसी स्थान पर ठहरना चाहिए ।"

"किंतु क्या यहां रात बिताई जा सकती है ?" कीर्ति ने विरोध किया । किंतु और कुछ चारा भी तो नहीं था । अतः वे वहीं पर एक-दूसरे से सटकर बैठ गए ताकि गर्माई बनी रहे ।

शमशेर बोला, "यदि तुम लोगों में साहस हो तो हम इसे पार करने का यत्न करें । हमारे कदम फिसलने नहीं चाहिए । रास्ता हम कदापि नहीं भूलेंगे ।" कीर्ति और मनबहादुर ने पार जाने में अपनी असमर्थता प्रकट कर दी ।

"मैं स्वयं ही धार को पार करूंगा तथा नीचे गांव में पहुंचकर सहायता के लिए कुछ व्यक्तियों को लेकर आऊंगा ।" इतना कहकर शमशेर ने उन्हें वहीं छोड़ चल दिया । इस समय धार को पार करना बहुत ही साहस का कार्य था । जिधर धुंध कुछ कम थी, शमशेर उसी दिशा में चला और धार की तरफ बड़ी सावधानी और ध्यान से नाप-नापकर कदम रखने लगा ।

बहादुर शमशेर यह भली-भांति जानता था कि उसका अपना और दोनों साथियों का भाग्य उसकी सावधानी और मस्तिष्क के संतुलन पर ही निर्भर है। वह चक्करदार पहाड़ियों पर चढ़ने का अभ्यस्त था क्योंकि वह कई बार अपने चाचा के साथ छोटी-मोटी पहाड़ियों पर चढ़ चुका था।

तीन मिनट में ही वह अपने मित्रों की दृष्टि से ओझल हो गया। वह अकेला, बिना साथी के पहाड़ों के मध्य एक भयानक रास्ते को पार कर रहा था। देहात के लोग इस रास्ते को 'शैतान का रास्ता' कहते थे। एक स्थान पर रास्ता एकदम टूटा-फूटा था, वहां उसे घुटनों और कुहनियों के बल रेंगना पड़ा। लेकिन थोड़ी देर बाद ही यह भयानक यात्रा समाप्त हो गई। शीघ्र ही उसे पहाड़ी पगडंडी मिल गयी और वह भागा-भागा नीचे गांव में पहुंच गया।

शमशेर ने सहायता के लिए एक कुटिया का द्वार खटखटाया तथा सारी बात बताई। गृह-स्वामी के कहने पर वह हरिहर नामक चरवाहे के घर गया। हरिहर ने सचेत होकर शमशेर की कहानी सुनी।

वे दोनों एक लालटेन, एक रस्सी और कुछ भोजन लेकर रवाना हुए। हरिहर इस किशोर पर्वतारोही की क्षमता देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ। आकाश में चांद निकल आया था। पहाड़ी पर चारों ओर चांदी की चादर बिछी हुई थी। हरिहर इस शैतान के मार्ग पर चढ़ने का अभ्यस्त था, उसने रस्सी का एक सिरा शमशेर की कमर में बांध दिया ताकि वह सुरक्षित रह सके। उस मार्ग को पार करने में शमशेर को जितना समय लगा था उससे कम समय में ही उन्होंने वह रास्ता पार कर लिया। पहाड़ी पर पहुंचकर उन्होंने देखा कि दोनों साथी चांदनी रात के धुंधलके में एक-दूसरे से सटे बैठे हैं।

दोनों किशोर दिसम्बर की उस बर्फीली हवा में कांप रहे थे। उनके होंठ ठंड के मारे नीले पड़ गए थे और दांत आपस में बज रहे थे। साथ लाई हुई रोटी और आलू की सब्जी दोनों बच्चे चट कर गए। इसी बीच हरिहर ने रस्सी का एक छोर अपनी कमर में बांध लिया और इसके बाद कीर्ति और

मनबहादुर की कमर में भी लपेट दिया किंतु शमशेर की कमर बांधने के लिए रस्सी नहीं बची थी। अतः रस्सी का एक छोर उसकी बांह में बांध दिया गया। दोनों ओर की हज़ारों फीट गहराई को देखकर फिर उसके मन में भय छा गया। एक बार तो मनबहादुर बिलकुल ही घबरा गया था। वह फिसला, कांपा और एक ओर लुढ़कने लगा। झटका लगने पर कीर्ति भी रस्सी के ऊपर घुटनों के बल गिर पड़ा। हरिहर ने मजबूती के साथ कीर्ति को पकड़ लिया। उसी समय शमशेर एक झुकी हुई चट्टान पर कूद गया। तब हरिहर ने मनबहादुर को भी हाथ से पकड़कर सुरक्षित स्थान पर खींच लिया। समय तो काफी लग गया पर ये सब नीचे गांव में सही-सलामत पहुंच गए।

जब यह बाल-मंडली स्कूल पहुंची तब शमशेर के साहसपूर्ण कार्य की सूचना सारे कमरों में फैल चुकी थी। जाड़े के मौसम में महादेव की चोटी पर चढ़नेवाले इस दल का वह सम्मान हुआ कि उस दिन सम्मानित किए जानेवाले देवेन्द्र राणा का रंग भी फीका पड़ गया। वह शूरवीरता में उस बच्चे से कम पड़ गया जो तीन बार उस 'शैतान के रास्ते' को पार कर चुका था और वह भी उस समय जबकि दिन की रोशनी डूब रही थी और पहाड़ी के अंचल में जाड़े के मौसम का घना अंधकार फैलता जा रहा था।

अंगुलिमाल

अंगुलिमाल के पिता का नाम गार्ग्य और माता का नाम मैत्रायनी था। गार्ग्य कोसलनरेश के राजपुरोहित थे। अंसुलिमाल का बचपन का नाम था 'अहिंसक।

राजपुरोहित गार्ग्य ने अपने पुत्र अहिंसक को ऊंची शिक्षा पाने के लिए तक्षशिला विश्वविद्यालय में भेजा। उच्चशिक्षा के लिए तक्षशिला विश्वविद्यालय की उन दिनों बड़ी धाक थी। राजनीति, अर्थशास्त्र, आयुर्वेद, व्याकरण और ज्योतिष सभी विषयों की शिक्षा का यहां प्रबंध था। यहां शिक्षा निःशुल्क दी जाती थी।

अहिंसक अनुशासन में रहता, गुरुओं की आज्ञा मानता, मीठा बोलता और सभी से सभ्यतापूर्ण व्यवहार करता। वह पढ़ने-लिखने में भी आगे था। वह अपना समय व्यर्थ की गप-शप में नहीं गंवाता था। बड़ी तन्मयता से वह गुरुजी को पढ़ाते सुनता। इसीलिए सारी बातें उसकी बुद्धि में पैठ जाती थीं।

प्रायः ऐसा होता है कि जो छात्र स्वयं पढ़ने-लिखने में निकम्मे होते हैं, वे अच्छे छात्रों से ईर्ष्या करते हैं। उनकी पढ़ाई-लिखाई में रुकावट डालते हैं और जब इसमें सफलता नहीं मिलती तो दूसरे हथकंडे अपनाते हैं। अहिंसक के साथ भी यही हुआ। उसके सहपाठियों ने आपस में सलाह करके उसे तंग करने का निश्चय किया। उसे बदनाम करने के लिए उन्होंने उसके चरित्र को लेकर तरह-तरह की बातें करनी प्रारंभ कर दीं। एक अध्यापक की पत्नी के साथ उसके संबंधों की बात उन्होंने फैलायी।

विरोधी छात्रों ने अपने को तीन टोलियों में बांट लिया। एक टोली अध्यापक के घर गई और प्रणाम करके सब चुपचाप खड़े रहे।

अध्यापक ने पूछा, "आप सब कैसे आए हैं ? क्या कहना चाहते हैं ?"

तब उस टोली में से एक बोला, "यहां चारों ओर अफवाह फैली हुई है कि अहिंसक आपकी अनुपस्थिति में आपके घर आता-जाता है।"

अध्यापक को उनकी धूर्तता पर बड़ा क्रोध आया और उसने उन्हें बुरी तरह झाड़ दिया। वह बोला, "आप सब मेरे और अहिंसक के बीच झगड़ा करवाने का प्रयत्न न करें। इसमें आपको कभी सफलता नहीं मिलेगी।"

इसके बाद छात्रों की दूसरी टोली आई और उसने भी अध्यापक के सामने वही बात दोहरा दी जो पहली टोली ने कही थी। इसके बाद तीसरी टोली आई और उसने भी वही बात कही। उन्होंने अध्यापक को कहा कि यदि आपको हमारी बात पर विश्वास नहीं हो तो परीक्षा करके देख लें।

अध्यापक ने देखा कि ये छात्र बड़े अपनेपन से बात कर रहे हैं। उसने सोचा, हो सकता है इनकी बात में कुछ सचाई हो। उसने मन में निश्चय किया यदि यह बात सत्य हुई तो मैं अहिंसक की हत्या कर दूंगा। पर यदि मैंने स्वयं उसकी हत्या की तो लोग कहेंगे कि इतने विख्यात अध्यापक ने अपने शिष्य की हत्या लोगों की झूठो चर्चा के आधार पर कर दी। तब मेरे पास कोई भी छात्र पढ़ने नहीं आएगा और मेरा अध्यापन-कार्य समाप्त हो जाएगा।

उसने निश्चय किया कि मैं शिक्षा की समाप्ति पर अहिंसक से कहूंगा कि वह मुझे मेरी गुरुदक्षिणा दे और जब वह पूछेगा कि क्या गुरुदक्षिणा दूं तो मैं कहूंगा कि एक हज़ार लोगों की हत्या करो। यही मेरी गुरुदक्षिणा होगी।

अध्यापक ने अवसर आने पर अहिंसक से गुरुदक्षिणा मांगी। अहिंसक ने पूछा तो उन्होंने एक हज़ार लोगों की हत्या करने को कह दिया।

यह सुनकर अहिंसक बोला, "मैं ऐसे परिवार में उत्पन्न हुआ हूं जिसमें सभी प्रकार की हिंसा करना मना है। इसलिए मैं एक हज़ार तो क्या एक की भी हत्या नहीं कर सकता।"

जब अहिंसक ने अपने अध्यापक को मुंहमांगी गुरुदक्षिणा देने में अपनी

असमर्थता प्रकट की तो अध्यापक ने क्रोध में भरकर अहिंसक को शाप दे दिया। अध्यापक ने कहा, "जब तक तुम मेरी गुरुदक्षिणा नहीं दोगे, तुम्हारी शिक्षा सफल नहीं होगी।"

इस शाप को सुनकर अहिंसक को बड़ी चिन्ता हुई। उसने गुरु को मुंह-मांगी दक्षिणा देने का निश्चय किया ताकि इतने वर्ष प्रयत्नपूर्वक प्राप्त की हुई शिक्षा सफल हो सके।

उसने तेज़ धारवाले हथियार लिए और एक निर्जन जंगल में चला गया। उस जंगल में से जो कोई भी जाता, अहिंसक उसीको मार डालता। कुछ दिन तो वह मरने वालों की गिनती याद रखता रहा पर बाद में उसने सोचा कि इस तरह गिनती में भूल हो सकती है। अब वह जिसे मारता, उसकी एक अंगुली को काट लेता और धागे में पिरो लेता। इन अंगुलियों की माला वह गले में डाले रखता था। लोगों में वह अंगुलिमाल के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

अंगुलिमाल के भय से इस जंगल में कोई नहीं घुसता। यहां लकड़ियां काटने भी कोई नहीं आता और यदि कोई अनजाने भूला-भटका जंगल में चला ही जाता तो कभी लौटकर नहीं आता। अंगुलिमाल का आतंक चारों ओर फैल गया। अब तो कोई उस जंगल के पास भी नहीं फटकता।

अंगुलिमाल को कई-कई दिन तक कोई भी मारने को नहीं मिलता। तब अंगुलिमाल जंगल के आस-पास के गांवों पर धावा बोलने लगा। वह रात को गांव में घुस जाता। किसी घर का द्वार तोड़ता और सोए हुए व्यक्ति को मार-कर वापस जंगल में लौट आता। क्रूर, रक्त-रंजित हाथों वाले इस अंगुलिमाल को दया तो जैसे छू भी नहीं गई थी। जंगल के आस-पास के गांव उसके भय से खालीहो गए। पर लोगों को इस बात पर बड़ा आश्चर्य था कि यह हत्यारा किस उद्देश्य से लोगों को मारता था। क्योंकि वह किसी की धन-सम्पत्ति को छूता तकनहीं था। लोग उसे भूत-प्रेत जैसा कुछ समझते थे। इसीलिए कोई भी उसका सामना करने की हिम्मत नहीं करता था। ग्राम, नगर और जनपद

सब में अंगुलिमाल के नाम का आतंक छाया हुआ था।

जिस क्षेत्र में अंगुलिमाल हत्याएं कर रहा था, वह क्षेत्र श्रावस्ती राज्य के अन्तर्गत था और उन दिनों श्रावस्ती का राजा प्रसेनजित था।

भगवान् बुद्ध अपने मत का प्रचार करते हुए श्रावस्ती में पधारे। उनके उपदेशों को सुनने के लिए बड़ी संख्या में लोग इकट्ठे होने लगे। इन्हीं लोगों से भगवान् बुद्ध ने अंगुलिमाल के दिन-प्रतिदिन बढ़ते हुए अत्याचार के बारे में सुना।

भगवान् बुद्ध ने निश्चय किया कि वे इस विचित्र हत्यारे को समझा-बुझाकर इस पापकर्म से रोकेंगे। उन्होंने अंगुलिमाल के पास जाने का निश्चय किया। लोगों ने जब सुना कि भगवान् बुद्ध अंगुलिमाल के पास जा रहे हैं तो वे भय से कांपने लगे। उन्हें पता था कि वह दुष्ट भगवान् बुद्ध की भी हत्या कर देगा।

जब महात्मा बुद्ध उस जंगल की ओर चले जिसमें अंगुलिमाल रहता था तो आस-पास के किसानों-चरवाहों ने उन्हें बहुत रोका कि उस ओर न जाएं। उन्होंने कहा कि जो भी उधर गया वह लौटकर नहीं आया। पर महात्मा बुद्ध ने किसी की बात नहीं मानी। वे चुपचाप जंगल की ओर चलते रहे।

अंगुलिमाल ने दूर से देखा तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह भिक्षुक मेरी ओर आने का साहस कैसे कर रहा है! उसने अपनी तलवार उठाई और साहसी भिक्षु की गर्दन काटने के लिए चल पड़ा।

महात्मा बुद्ध ने उसे तलवार लिए आते देख लिया। पर वे ज़रा भी नहीं डरे। वे कोई ऐसे-वैसे संन्यासी नहीं थे। इनके पास अहिंसा की शक्ति थी, सबकी हित-कामना की शक्ति थी। वे पापी का हृदय बदलकर उसे धर्मात्मा बनाने की सामर्थ्य रखते थे। उनके पास योग की दिव्य-शक्ति थी। अंगुलिमाल ज्योंही महात्मा बुद्ध से कुछ दूर रह गया तो उसके पांव रुक गए। वह एक पग भी आगे नहीं बढ़ सका। उसने तलवार उठाने का प्रयत्न किया तो तलवार भी नहीं उठी। वह आश्चर्यचकित था कि आज उसे हो क्या गया है! इसके

विपरित उसे देखकर लोगों की चलने, बोलने और प्रतिकार करने की शक्ति मारी जाती थी। उसने कड़ककर महात्मा बुद्ध को कहा, "स्थिर रहो।"

महात्मा बुद्ध बोले, "मैं तो स्थिर हूं। तुम क्यों नहीं स्थिर रहते।"

अंगुलिमाल बोला, "झूठ बोलते हो। संन्यासी होकर झूठ बोलते हो। तुम चल रहे हो और बोलते हो मैं स्थिर हूं। मैं खड़ा हूं तो मुझे कहते हो कि मैं अस्थिर हूं। यह क्या बात है ?"

महात्मा बुद्ध बोले, "ठीक तो है। मैंने हिंसा रूपी दंड का परित्याग कर दिया है। मुझे किसी से भय नहीं है। मैं किसी से नहीं डरता। इसलिए मैं स्थिर हूं। और तुम ! हिंसक हो, असंयमी हो। तुम लोगों के प्राण लेते हो, इसलिए तुम्हें भी सदा अपने प्राणों का भय रहता है। इसलिए मैंने कहा कि तुम अस्थिर हो। हो न ! बोलते क्यों नहीं।"

महात्मा बुद्ध के इन वचनों का अंगुलिमाल पर बड़ा प्रभाव पड़ा। उसने मन में निश्चय किया कि वह भविष्य में कभी किसी की हत्या नहीं करेगा। उसने अपनी तलवार और अन्य हथियार फेंक दिए। वह महात्मा बुद्ध के चरणों में गिर पड़ा। उसने महात्मा बुद्ध से प्रार्थना की कि उसे अपना शिष्य बना लें।

बुद्ध तो सारे संसार को अहिंसा धर्म की शिक्षा देने आए थे। उन्होंने अंगुलिमाल का स्वागत किया। उन्होंने उसे भिक्षु बना लिया और भिक्षु धर्म की शिक्षा दी।

अंगुलिमाल ने भिक्षु धर्म के नियमों की बड़ी तत्परता के साथ पालन किया और दिनों-दिन उन्नति करने लगा। भगवान् बुद्ध के शिष्यों में अंगुलिमाल ने प्रमुख स्थान बना लिया और उसने शिक्षुक को ऊंची पदवी 'अर्हंत' पद को प्राप्त कर लिया।

कच और देवयानी

कच देवताओं के गुरु वृहस्पति के पुत्र थे। देवताओं और राक्षसों में प्रायः लड़ाई-झगड़ा होता ही रहता था। राक्षसों के गुरु थे शुक्राचार्य। वृहस्पति और शुक्राचार्य दोनों एक-दूसरे से बढ़कर थे। पर शुक्राचार्य संजीवनी विद्या जानते थे। इस विद्या के द्वारा वह मरे हुए राक्षसों को दोबारा जीवित कर देते थे। दूसरी ओर लड़ाई में जो देवता मर जाते, वे मर ही जाते। इस तरह देवताओं की शक्ति दिनों-दिन घटने लगी। इससे देवताओं को बड़ी चिन्ता हुई।

देवराज इन्द्र ने देवताओं की सभा बुलाई। सभा के सामने इन्द्र बोले, "हमारी संख्या दिन-दिन घटती जा रही है और राक्षसों की संख्या बढ़ती जा रही है। ऐसी स्थिति में राक्षसों को युद्ध में जीतना कठिन है। इसलिए कोई ऐसा उपाय सोचिए कि देवता भी मरकर दोबारा जीवित हो जाएं!"

देवताओं में से कोई बोला "किसी तरह शुक्राचार्य से संजीवनी विद्या सीखने का प्रयत्न करना चाहिए।"

कच ने कहा, "यह काम मैं कर सकता हूं!"

कच की बात सुनकर देवता बहुत प्रसन्न हुए। बोले, "हमारा पथ-प्रदर्शक और रक्षक आचार्य वृहस्पति ही हैं। उनके योग्य पुत्र से भी हमें यही आशा और विश्वास है कि वह देवताओं की विजय के लिए कठिन से कठिन काम को भी अवश्य करेंगे।"

संजीवनी विद्या सीखने के लिए ब्रह्मचारी कच शुक्राचार्य के आश्रम पर पहुंचा। उसने शुक्राचार्य के चरण छूकर अपना परिचय दिया और अपने आने का उद्देश्य भी बताया।

शुक्राचार्य ने कच की प्रार्थना स्वीकार करके उसे संजीवनी विद्या सिखाना स्वीकार कर लिया।

अब ब्रह्मचारी कच शुक्राचार्य के आश्रम में रहकर विद्या पढ़ने के साथ-साथ उनकी सेवा भी करने लगा।

शुक्राचार्य की एक ही बेटी थी। उसका नाम था 'देवयानी'। आचार्य शुक्र अपनी पुत्री को बहुत चाहते थे। इसीलिए ब्रह्मचारी कच गुरु और गुरुपुत्री दोनों को प्रसन्न रखने का पूरा प्रयत्न करता। इसी तरह कच को शुक्राचार्य के आश्रम में रहते और तन-मन से सेवा करते कई वर्ष बीत गए।

जब राक्षसों को पता चला कि देवताओं के गुरु बृहस्पति का पुत्र कच हमारे गुरुजी के पास संजीवनी विद्या का भेद लेने के जिए ठहरा हुआ है तो वे लाल-पीले हो उठे। पर वे अपने गुरु शुक्राचार्य को तो कुछ कह नहीं सकते थे। इसोलिए उन्होंने कच को मार डालने का निश्चय किया।

एक दिन ब्रह्मचारी कच जंगल में आचार्य की गाएं चराने गया हुआ था कि राक्षसों ने उसे घेर लिया और उसको काटकर कई टुकड़े कर के कुत्तों को खिला दिए। सांझ हुई तो गाएं अकेली आश्रम को लौट आयीं पर कच का कुछ पता नहीं था। कच के जंगल से लौटकर न आने से देवयानी को बड़ी चिंता हुई। उसका दिल शंकाओं से भर उठा और धुक-धुक करने लगा। वह दौड़ी-दौड़ी पिता के पास जाकर बोली, "पिताजी, सांझ को गाएं तो अकेली जंगल से वापस आ गईं पर कच अभी तक नहीं आया। अब तो तारे भी निकलने लगे हैं। कहीं उस पर कोई विपत्ति न आ पड़ी हो आप उसे खोजने का कोई उपाय कीजिए न!" कहते-कहते देवयानी की आंखों से दो बूंद आंसू ढुरक पड़े।

शुक्राचार्य भी अपने योग्य शिष्य के जंगल से लौटकर न आने से उदास हो गए। देवयानी को दुखी देख उनकी चिंता और बढ़ गई। शुक्राचार्य ने अपनी दिव्यशक्ति से जान लिया कि राक्षसों ने कच को मार डाला है। उन्होंने उसे

फिर से जीवित करने का निश्चय किया। अपनी संजीवनी विद्या का प्रयोग करते हुए उन्होंने कहा, "कच, मेरे प्रिय शिष्य कच, आओ!" संजीवनी विद्या की अद्‌भुत शक्ति के कारण आचार्य के पुकारते ही कच के शरीर के टुकड़े कुत्तों के पेट फाड़कर निकल आए और फिर से जुड़ गए। कच जीवित हो उठा और हाथ जोड़कर गुरु शुक्राचार्य के सामने आ खड़ा हुआ।

देवयानी उसे देखकर खिल उठी। उसने पूछा, "कच! तुम इस समय तक कहां थे? ठीक तो हो न? मैं तो पता नहीं क्या-क्या सोचती रही।"

कच ने उत्तर दिया, "क्या बताऊं, मैं हवन के लिए समिधा, कुश और लकड़ियों का बोझ लेकर आ रहा था। थक गया था इसलिए एक वृक्ष के नीचे सुस्ताने बैठ गया। इतने में कुछ राक्षस वहां आए और मुझसे मेरा नाम-धाम पूछने लगे। ज्योंही मैंने बताया कि मेरा नाम कच है और मैं आचार्य वृहपति का पुत्र हूं तो उन्होंने शस्त्र निकाल लिए और मुझे काट डाला। फिर गुरुदेव ने मुझे जीवित कर दिया और मैं आपकी सेवा के लिए उपस्थित हो गया हूं।" इतना कहकर वह फिर आश्रम के काम-काज में लग गया।

कुछ दिनों बाद देवयानी ने कच को जंगल से फूल चुन लाने के लिए भेजा। राक्षस तो उस दिन से कच के पीछे हाथ धोकर पड़े हुए थे। उन्होंने कच को घेरकर मार डाला और कूट-पीसकर समुद्र के जल में बहा दिया। उनका विचार था कि अब आचार्य शुक्र उसे जीवित नहीं कर सकेंगे।

जब वह देर तक लौटकर नहीं आया तो देवयानी को चिंता हुई। वह आंखों में आंसू भरकर फिर पिता शुक्राचार्य के पास पहुंची और कच के न लौटने की बात बताई। शुक्राचार्य समझ गए कि फिर दानवों ने उसे मार डाला होगा। उन्होंने फिर संजीवनी विद्या के द्वारा कच को जीवित कर दिया।

कच ने फिर सारी कहानी कह सुनाई कि उसके साथ क्या कुछ बीती।

असुरों को जब पता लगा कि अपनी बेटी के आग्रह से आचार्य ने फिर से कच को जीवित कर दिया है तो उन्होंने कहा, "हम अबकी बार ऐसा उपाय करेंगे

कि आचार्य कच को जीवित न कर सकें।"

उन्होंने कच को फिर घेर लिया और उसके शरीर को आग में अच्छी तरह जलाकर राख बना डाली। फिर उस राख को मदिरा में घोलकर शुक्राचार्य को पिला दिया।

आज फिर कच लौटकर नहीं आया तो देवयानी रुआंसी-सी होकर अपने पिता के पास गई और कच के अब तक लौटकर न आने की बात बताई। उसने शंका प्रकट की कि संभवतः दानवों ने फिर कच को मार डाला है। वह बोली, "यदि कच जीवित नहीं हुआ तो मैं भी अपने प्राण दे दूंगी।"

अब तो शुक्राचार्य को भी चिंता हुई। वे देवयानी को बहुत चाहते थे और उसकी किसी बात को टालते नहीं थे। वे देवयानी से बोले, "बेटी, कच को फिर राक्षसों ने मार डाला है। ये राक्षस उसे जीवित नहीं देखना चाहते हैं। मैं दो बार तो उसे जीवित कर चुका। अब मैं क्या कर सकता हूं। तुम उसके लिए अपना दिल छोटा न करो। मेरी बेटी होकर भी तू इस तरह रो रही है। उस ब्रह्मचारी को अब जीवित करना असंभव है।"

देवयानी हठ करती हुई बोली, "पिताजी, इतने वर्षों से ब्रह्मचारी कच आपके पास रहकर हम दोनों की तन-मन से सेवा कर रहे थे। आज तक कभी भी उन्होंने आपकी या मेरी आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया। मैं जो भी कार्य बताती, उसे वे बड़ी तत्परता से कर देते, फिर उनके लिए दुःख न मनाऊं, आंसू न बहाऊं तो किसके लिए बहाऊं। यदि कच जीवित नहीं हो सकते तो मैं भी जीवित नहीं रहूंगी। मैं अभी से खाना-पीना छोड़ती हूं और जहां वे गए हैं, वहीं चली जाऊंगी।"

अब तो शुक्राचार्य के लिए कच को फिर से जीवित करना आवश्यक हो गया। उन्हें राक्षसों पर बड़ा क्रोध आया। उन्होंने सोचा, "ये राक्षस लोग मुझसे शत्रुता रखते हैं तभी तो बार-बार मेरे शिष्य को मार डालते हैं। ये राक्षस चाहते हैं कि मैं अपने ब्राह्मण धर्म को छोड़ दूं। इस पाप का परिणाम

इन्हें अवश्य भोगना पड़ेगा।"

शुक्राचार्य ने तीसरी बार फिर अपनी संजीवनी विद्या का प्रयोग कच को जीवित करने के लिए किया। उन्होंने पुकारा, "मेरे प्रिय शिष्य कच! आओ।"

कच तो राख के रूप में गुरु के पेट में ही पहुंच चुका था वह पेट में से धीरे से बोला, "गुरुदेव! आप सदा मुझ पर प्रसन्न रहें और कृपा दृष्टि रखें। मैं कच, आपको प्रणाम करता हूं। जैसे पिता पुत्र से स्नेह करता है, वैसे ही आप मुझ पर अपनी स्नेह दृष्टि रखें।"

अपने ही पेट से आती कच की आवाज़ को सुनकर शुक्राचार्य बड़े विस्मित हुए। उन्होंने पूछा, "प्रिय कच, मेरे पेट के भीतर तुम कैसे पहुंच गए?"

कच ने विनयपूर्वक उत्तर दिया, "गुरुदेव! आपकी पुत्री देवयानी ने मुझे पुष्प लेने वन को भेजा था। वहां राक्षसों ने मुझे मार कर जला डाला और मेरी राख को मदिरा में मिला कर आपको पिला दिया। इस तरह मैं आपके पेट में जा पहुंचा। मैं इस समय यदि आपके पेट को फाड़कर बाहर निकलता हूं तो मुझे पाप लगेगा। इसीलिए मैं यहां आपके पेट में एक-एक क्षण बड़े कष्ट से बिता रहा हूं।"

शुक्राचार्य बोले, "बेटी देवयानी! अब तुम्हीं बताओ कि तुम क्या चाहती हो। कच को जीवित करने के लिए मुझे अपने प्राण देने पड़ेंगे। मेरे पेट को फाड़कर ही वह बाहर निकल सकता है और कोई उपाय नहीं है।"

देवयानी बोली, "पिताजी, कच का वियोग मुझे आग की तरह जला रहा है और आपकी मृत्यु से तो मैं जीवित ही नहीं रहूंगी। हे भगवान्! मैं तो कहीं की न रही! अब मैं क्या करूं!"

शुक्राचार्य चिन्ता में डूब गए कि अब क्या करें और क्या न करें।

वास्तव में राक्षसों ने यही चाल चली थी। यदि शुक्राचार्य अपनी संजीवनी विद्या से कच को जीवित करते तो स्वयं मरते और न करते तो भी राक्षसों का मनचाहा होता।

शुक्राचार्य को एक उपाय सूझ गया। वे बोले, "वृहस्पति के पुत्र कच ! देवयानी तुम्हें चाहती है, यह स्पष्ट हो गया है। यदि कच के रूप में तुम देवताओं के राजा इन्द्र नहीं हो तो मैं तुम्हें संजीवनी विद्या सिखाने को तैयार हूं। तुम ब्राह्मण पुत्र हो, इसलिए मैं तुम्हें जीवनदान दूंगा। दूसरा कोई होता तो मैं उसे कभी भी इस तरह प्राणों का संकट लेकर जीवित न करता मैं तुम्हें जीवनदान देने के साथ-साथ मृतसंजीवनी विद्या भी सिखाता हूं। मेरी बात को ध्यान से सुनो। मुझे तुमने गुरु माना है तो विद्या सीख लेने पर भी मुझे वैसे ही समझना जैसे आज समझते हो। मेरे पेट को चीरकर जब तुम बाहर निकलोगे तो मैं पेट फटने से मर जाऊंगा। तब तुम मुझे, मुझसे ही सीखी हुई संजीवनी विद्या द्वारा उसी तरह जीवित कर देना, जैसे मैंने तुम्हें तीन बार जीवित किया है।" यह कहकर शुक्राचार्य ने पेट में स्थित कच को संजीवनी विद्या का उपदेश दिया। विद्या सीखने पर कच शुक्राचार्य का पेट फाड़कर बाहर निकल आया। वह पहले ही की तरह स्वस्थ और सुन्दर था। उसने शुक्राचार्य के कहे अनुसार, सबसे पहले शुक्राचार्य से सीखी हुई संजीवनी विद्या से उन्हें ही जीवित किया।

देवयानी के आनंद का ठिकाना नहीं था। उसके पिता और प्रिय दोनों का पुनर्जन्म हुआ था।

कच को जीवन-दान तो मिला ही था, शुक्राचार्य के पास वह जिस उद्देश्य को लेकर आया था, वह भी पूरा हो गया था। उसकी भी प्रसन्नता का ठिकाना नहीं था।

आचार्य शुक्र भी प्रसन्न थे। उन्होंने योग्य शिष्य को वह अद्भुत विद्या सिखाई थी और अपनी प्यारी बेटी की बात भी पूरी की थी।

जब शुक्राचार्य जीवित हो गए तो कच ने उनके चरणों में प्रणाम किया और बोला, "गुरुदेव ! मैं अज्ञानी था, आपने अपने ज्ञान का प्रकाश मुझे दिया। आपने मुझे ऐसी अद्भुत विद्या सिखाई है, जिसे आपके सिवा दूसरा कोई नहीं

जानता था। मैं आपके पेट से निकला हूं इसलिए आप मेरे गुरु ही नहीं माता-पिता भी हैं। मैं आपके उपकार को कभी नहीं भूलूंगा, कभी भी नहीं। मेरे लिए आप ईश्वर, गुरु और माता-पिता सभी कुछ हैं। मैं आपके ऋण से कभी उऋण नहीं हो सकता। आप धन्य हैं।" कहते-कहते कच का गला रुंध गया और आंसू

टपक-टपककर गुरु के चरणों को भिगोने लगे।"

शुक्राचार्य को मन ही मन इस बात का बड़ा दुःख था कि मदिरा पीने की बुरी लत के कारण ही ऐसी कठिन विपत्ति का सामना करना पड़ा। मदिरा-पान के प्रति उनके मन में क्षोभ और घृणा उत्पन्न हो गई। उन्होंने समझ लिया कि यह चीज़ बुद्धि को भ्रष्ट करने वाली है। उस दिन से उन्होंने मदिरा को छुआ तक नहीं।

फिर शुक्राचार्य ने राक्षसों को बुलाकर कहा, "तुम सब के सब मूर्ख हो। तुम्हारी ही दुष्टता के कारण मुझे कच को संजीवनी विद्या सिखानी पड़ी। अब वह मेरी ही तरह मरे देवताओं को जीवित कर सकेगा।"

शुक्राचार्य से संजीवनी विद्या देवताओं तक पहुंच जाने की बात सुनकर राक्षस उदास हो गए और अपने-अपने घर गए।

कच इसके बाद भी कई वर्ष तक शुक्राचार्य के पास रहा। वह पूरी निष्ठा से ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करता हुआ गुरु और गुरुपुत्री की सेवा करता रहा।

जब कच की शिक्षा की अवधि पूरी हो गई तो गुरुदेव ने उसे जाने की आज्ञा दे दी।

जब कच चलने लगा तो देवयानी बोली, "कच ! तुम सदाचार, कुलशील, विद्या-बुद्धि, तपस्या और संयम में बहुत बढ़े-चढ़े हो। इसीलिए तुम्हारे मुख-मंडल पर बड़ा तेज है। तुम इतने वर्ष यहां रहे और मैंने तुम्हारे साथ कैसा स्नेहपूर्ण व्यवहार किया, यह बात तुम जानते हो। तुम्हारा यहां रहने का व्रत पूरा हुआ और जो विद्या तुम सीखना चाहते थे, वह भी पिताजी ने सिखा दी। इतने वर्षों तक साथ-साथ रहने के कारण तुमने मेरा हृदय जीत लिया है। तुम्हारे यहां से जाने की बात सोचकर ही मेरा मन धक से बैठने लगता है। मुझे लगता है कि मैं तुम्हारे बिना यहां नहीं रह सकूंगी। इसलिए मेरी प्रार्थना है कि तुम मुझे अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार करो और विधिपूर्वक मेरे साथ विवाह करो।" यह कहकर देवयानी लज्जा और संकोच से सिर झुकाकर कच

के उत्तर की प्रतीक्षा करने लगी।

देवयानी की बात सुनकर कच ने कहा, "देवी देवयानी, जैसे आपके पिता शुक्राचार्य मेरे लिए पूजनीय और माननीय हैं, वैसे ही आप भी मेरे लिए पूज्या और आदरणीया हैं। आप मेरे गुरुदेव की पुत्री हैं, इसलिए भी मेरे लिए सदा पूज्या हैं। इसलिए मैं आपकी बात को मानने में असमर्थ और विवश हूं। आपको मुझसे ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए थी।"

देवयानी बोली, "कच ! तुम देवताओं के गुरु वृहस्पति के योग्य पुत्र हो और मैं असुरों के गुरु आचार्य शुक्र की एकमात्र पुत्री हूं। मैं बहुत पहले से तुम्हें अपने मन में स्थान दे चुकी हूं। मैंने ही बार-बार पिताजी से कहकर तुम्हें जीवित करवाया है। जब तक तुम्हारा ब्रह्मचर्य व्रत और शिक्षा का समय पूरा नहीं हुआ था, मैंने अपने मन की बात मन में ही रखी। आज उपयुक्त अवसर पर मैंने जो उचित बात कही है, वह तुम्हें मान लेनी चाहिए।"

कच ने फिर कहा, "देवी देवयानी, आप मेरे ऊपर पहले ही की तरह प्रसन्न रहें और कृपादृष्टि रखें। मैंने सदा आपको पूज्य दृष्टि से देखा है। मैं आपका पूरा आदर-सम्मान करते हुए भी समझता हूं कि आप मुझे जो कुछ करने को कह रही हैं, वह न तो उचित है और न धर्म के अनुकूल। आप भली-प्रकार जानती हैं कि मैं आचार्य के पेट से निकला हूं। इस दृष्टि से मैं उनका पुत्र हुआ और आप मेरी बहिन। इसलिए हमारा आपस में विवाह-बंधन में बंधना किसी प्रकार भी उचित नहीं है। मुझे आशीर्वाद देकर यहां से विदा कीजिए जिससे मेरा जीवन सुखी रहे। मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप सदा सावधान होकर और मन लगाकर गुरुदेव की सेवा करें। कभी-कभी मुझे भी याद कर लिया करें।"

इतना कहकर कच वहां से शीघ्रतापूर्वक इन्द्रलोक की ओर चल पड़ा।

जवाब लाजवाब

सिकन्दर ने जब भारत पर पहला हमला किया तो तक्षशिला का राजा अम्भि उससे मिल गया। राजा पुरु को हार खानी पड़ी। सिकन्दर जिन इलाकों को जीतता, उनकी अच्छी-अच्छी चीज़ों को हथिया लेता। भारत के साधु-महात्माओं के ज्ञान और बड़प्पन की उसने कई कहानियां सुन रखी थीं और उन कहानियों का उस पर बहुत असर हुआ था। कहते हैं कि वापस जाते समय वह कई ज्ञानी लोगों को अपने देश ले गया था।

तक्षशिला तो उन दिनों ज्ञान का गढ़ ही था। एक बहुत बड़ा विद्यालय उन दिनों वहां पर था। दूर-दूर से लोग विद्या सीखने वहां आते थे।

इस तक्षशिला में जब सिकन्दर पहुंचा तो उसने राजा अम्भि से पूछा—"तुम्हारे नगर की सबसे मशहूर चीज़ क्या है?"

राजा अम्भि ने जवाब दिया—"वैसे तो इस नगर में बड़े-बड़े प्रसिद्ध ज्ञानी, कारीगर, बहादुर और कलाकार हैं लेकिन उन सब में भी दस पण्डित तो ऐसे हैं कि उनके जोड़ का कहीं कोई है ही नहीं। वे बड़े ही हाजिर-जवाब हैं। कितना ही पेचीदा सवाल हो, वे एक क्षण में ही उसका जवाब बता देते हैं। निडर इतने हैं कि चाहे मौत सामने खड़ी हो, फिर भी नहीं घबराते।"

सिकन्दर ने कहा—"कल ही उन दस पंडितों को हमारे दरबार में हाजिर कीजिए। हम उनसे सवाल पूछेंगे। उनकी अकल और हाज़िर-जवाबी की परीक्षा लेंगे।"

दूसरे दिन दसों पंडित सिकन्दर के दरबार में हाज़िर हो गए।

सिकन्दर ने उनसे कहा—"हम तुम सबसे एक-एक सवाल पूछेंगे। जिसका

जवाब सबसे खराब हुआ, उसका सिर कलम कर दिया जाएगा।"

फिर उनमें जो सबसे बूढ़ा पंडित था, उससे कहा कि इस बात का फैसला आपको करना होगा कि किसका जवाब सबसे खराब है।

फिर नौ पंडितों को तो एक तरफ बिठाया और बूढ़े पंडित को अपने पास बिठाया।

अब सवाल-जवाब शुरू हुए। सिकन्दर ने पहले पंडित से सवाल पूछा—"दुनिया में जीवित आदमी ज्यादा हैं या मुर्दा ?"

पहले पण्डित ने जवाब दिया—"जीवित। क्योंकि जो मर गए, उनकी क्या गिनती ? वे तो हैं ही नहीं।"

सिकन्दर ने दूसरे पंडित से पूछा—"दुनिया में धरती पर ज्यादा जीव हैं या समुद्र में ?" पंडित ने जवाब दिया—"धरती पर, क्योंकि समुद्र भी तो धरती पर ही है।

अब तीसरे पंडित की बारी थी। सिकन्दर ने पूछा—"जानवरों में सबसे निराला जानवर कौन है ?"

जवाब मिला—"जिसे हमने अभी तक नहीं देखा। क्योंकि निराली चीज़ वह होती है, जिसे लोगों ने देखा न हो।"

सिकन्दर ने चौथे से पूछा—"बहादुर लोग मौत से क्यों नहीं डरते ?"

झट से उत्तर मिला—"क्योंकि वे मौत में ही ज़िन्दगी को देखते हैं और ज़िन्दगी से कोई क्यों डरने लगा ?"

सिकन्दर ने पांचवें पंडित से पूछा—"पहले दिन था या रात ?"

जवाब मिला—"न दिन न रात। इनमें से यदि कोई पहले-पीछे होता तो दुनिया का आदि-अन्त भी होता। जब से यह दुनिया है, तब से दिन-रात भी हैं।'

छठे पंडित से सिकन्दर ने पूछा—"हम दुनिया के प्यारे कैसे बन सकते हैं ?"

पंडित ने जवाब दिया—"नेक बनकर। क्योंकि बुरे को कोई प्यार नहीं करता।"

अब सातवें पंडित की बारी थी। सिकन्दर ने पूछा—"अगर आदमी देवता बनना चाहे तो क्या करे ?"

जवाब हाज़िर था—"ऐसा काम जिसे दूसरे लोग न कर सकें।"

सिकन्दर ने आठवें पंडित से पूछा—"मौत और ज़िन्दगी दोनों में ज्यादा ताकतवर कौन है ?"

जवाब मिला—"ज़िन्दगी। क्योंकि बड़े-बड़े दुःख और तकलीफें सह

लेती है। पर मौत को तो किसी ने दुःख झेलते नहीं देखा ?"

नौवें पंडित से पूछा—"आदमी को कब तक जिन्दा रहना चाहिए।"

पंडित ने कहा—"जब तक उसे यह न मालूम हो जाए कि अब तो जीने से मरना भला है।"

सिकन्दर ने नौ पंडितों की हाज़िर-जवाबी और अकलमन्दी देख ली। अब उसने दसवें बूढ़े पंडित से कहा—"अब आप अपना फैसला सुनाएं कि सबसे बुरा जवाब किसका है।

बूढ़े पंडित के बाल भी कोई धूप से सफेद नहीं हुए थे। वह जानता था कि मैं जिसके जवाब को बुरा बताऊंगा, उसी का सिर काट लिया जाएगा। इसीलिए उसने ऐसा ही जवाब दिया कि जिससे किसी भी पंडित का सिर न कट सके।

बूढ़े पण्डित ने कहा—"इनमें से हर किसी का जवाब एक-दूसरे से बुरा है।

नौ पंडितों की हाज़िर-जवाबी पर सिकन्दर आगे ही रीझ चुका था। दसवें के जवाब से वह और भी खुश हुआ। वह राजा अम्भि से बोला—"आपने ठीक ही कहा था। ये दसों अकल के धनी हैं।" फिर सिकन्दर ने उन्हें खूब इनाम दिया और विदा किया।

तपोदत्त की भूल

विद्याधर नामक एक ब्राह्मण था। उसके पुत्र का नाम तपोदत्त था। तपोदत्त का मन पढ़ने-लिखने में बिलकुल नहीं लगता था। पिता के बार-बार समझाने पर भी उसने पढ़ना-लिखना नहीं सीखा।

तपोदत्त जब बड़ा हुआ तो उसने देखा कि बिना पढ़े-लिखे कोई भी आदर नहीं करता। कुछ लोग तो उसे मुंह पर ही अनपढ़ और गंवार कह देते थे। उसके बचपन के साथी पढ़-लिखकर योग्य बन गए थे, काम-धन्धे में लग गए थे। समाज में सभी उनका आदर करते थे। घर में तपोदत्त का पिता अपने निठल्ले पुत्र को बात-बात पर झिड़कता रहता था।

घर में और बाहर भी अपमान होने पर तपोदत्त समझ गया कि विद्या के बिना गुजारा होना कठिन है। किन्तु अब इतनी उमर हो जाने पर छोटे बच्चों के साथ पढ़ने में उसे बड़ी लज्जा आती थी। उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था कि वह किस तरह विद्वान् बने। अन्त में उसने निश्चय किया कि वह अपनी तपस्या द्वारा भगवान् को प्रसन्न करेगा। जब भगवान् प्रसन्न होकर वरदान मांगने को कहेंगे तो वह विद्वान् होने का वरदान मांग लेगा।

बस यही सोचकर वह गंगा के तट पर एक गुफा में तपस्या करने लगा।

पढ़ने में तपोदत्त ने मन नहीं लगाया था, किन्तु तपस्या करने में उसने जरा भी कसर नहीं रखी।

एक दिन देवताओं का राजा इन्द्र ब्राह्मण का रूप बनाकर तपोदत्त के पास आये। इन्द्र ने तपोदत्त से पूछा, "तुम यह कठोर तप किसलिए कर रहे हो?"

तपोदत्त ने कहा, "मैं विद्वान् बनने के लिए घोर तपस्या कर रहा हूं। गुरु

से विद्या पढ़ने की तो मेरी उमर नहीं रही, दूसरे उसमें समय भी बहुत लगता है। इसलिए मैंने तपस्या द्वारा विद्या प्राप्त करने का निश्चय किया है।"

इन्द्र ने कहा, "ऐ तपस्वी, तुम्हारा विद्या प्राप्त करने का यह तरीका मेरे विचार में ठीक नहीं है। तुम व्यर्थ ही तपस्या द्वारा अपने शरीर को सुखा रहे हो। तुम्हें तो सीधे गुरु के पास जाकर विद्या सीखनी चाहिए।"

यह कहकर वह ब्राह्मण रूपधारी इन्द्र वहां से चला गया। तपोदत्त ने उस ब्राह्मण की बात की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। वह उसी तरहतपस्या करता रहा।

एक बार फिर देवराज इन्द्र ने तपोदत्त को तपस्या छोड़कर गुरु के पास जाने की सलाह दी। पर तपोदत्त ने स्पष्ट कह दिया कि जब तक मुझे विद्या-प्राप्ति का वरदान नहीं मिलेगा, मैं भी तपस्या करना नहीं छोड़ूंगा।

तब ब्राह्मण रूपधारी इन्द्र गुफा के सामने गंगा के तट पर जा बैठा और मुट्ठी में रेत में भरकर गंगा में फेंकने लगा।

जब तपोदत्त की दृष्टि ब्राह्मण पर पड़ी तो उसने ब्राह्मण से पूछा, "ब्राह्मण देवता! यह आप क्या कर रहे हैं?"

ब्राह्मण ने कहा, "लोगों को गंगा पार करने में बड़ी कठिनाई होती है। इसलिए मैं पुल बनाने में लगा हूं। यह पुल बन जाएगा तो लोग बड़ी सुगमता से आर-पार जा सकेंगे।"

तपोदत्त को हंसी आ गयी। वह बोला, "ब्राह्मण देवता, आपका काम करने का तरीका हो ठीक नहीं है। आप देख नहीं रहे हैं कि पानी का प्रवाह कितना तेज है। आप जो रेत डालते हैं, वह तुरन्त बह जाती है। इसलिए इस असंभव काम को छोड़कर, ऐसा काम कीजिए जिसमें सफलता मिल सके। इस तरह व्यर्थ का परिश्रम करने से क्या लाभ!"

ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "हे तपस्वी! तुम मेरे काम को असंभव बता रहे हो और चाहते हो कि मैं इसे छोड़ दूं। किन्तु मुझे यह बताओ कि तुम जो तपस्या

द्वारा विद्या प्राप्त करना चाहते हो, यह कैसे संभव है ?"

इस बार ब्राह्मण की बात का तपोदत्त पर प्रभाव पड़ा। उसे लगा कि

ब्राह्मण ने जो कुछ कहा है, वह ठीक ही है।

अन्त से वह तपस्या छोड़कर घर को वापस चला गया और अपने पिता से विद्या पढ़ने लगा। अपने परिश्रम और सच्ची लगन के कारण वह पढ़-लिखकर विद्वान् बन गया।

फिर क्या था ! फिर तो सभी उसका सम्मान करने लगे। उनकी प्रसिद्धि चारों ओर फैल गई और उस देश के राजा ने उसे राज-पंडित बना दिया।

जैसी करनी, वैसी भरनी

बरसात के चार मास एक ही जगह रहकर बिताने के लिए भगवान् बुद्ध श्रावस्ती नगरी के पास जेतवन में ठहरे हुए थे।

वे प्रतिदिन अपने उपदेश में ज्ञान की बातें बताते थे। उपदेश सुनने वालों में भिक्षु और गृहस्थ सभी होते थे। गृहस्थों में महापाल नामक एक धनी व्यक्ति भी था।

एक दिन अपने उपदेश में भगवान् बुद्ध ने बताया, "वही काम अच्छा होता है। जिसका आदि, मध्य और अन्त सभी अच्छा हो।"

इस उपदेश का महापाल पर कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह संघ में आ गया। उसने अपनी सम्पत्ति अपने भाई को दे दी। वह पांच वर्ष तक चौमासे में भगवान् बुद्ध के उपदेश सुनते रहा।

भगवान् बुद्ध ने महापाल का नाम बदलकर चक्षुपाल रख दिया।

विहार से कुछ दूर एक बहुत ही छोटी कुटिया चक्षुपाल ने अपने लिए बनवाई। यह कुटिया इतनी छोटी थी कि चक्षुपाल इसमें केवल बैठ ही सकता था। लेटने के लिए इसमें जगह नही थी। इस कुटिया में भिक्षु चक्षुपाल दिन-रात साधना-उपासना में लगा रहता। कुछ समय बाद उसकी आंखों से पानी बहने लगा। आंखों में पीड़ा भी होने लगी। श्रावस्ती नगर के वैद्यों को बुलाकर उसकी आंखों की चिकित्सा भी करवाई गई पर आंखें ठीक नहीं हुई। कुछ दिनों बाद उसे दिखना बन्द हो गया।

चक्षुपाल ने साधना-उपासना बन्द नहीं की। साधना के बल पर उसे ज्ञान प्राप्त हुआ और वह 'अर्हंत' बन गया।

वह चातुर्मास के समय जेतवन में जाकर भगवान् बुद्ध के उपदेश सुनता।

एक दिन भिक्षुओं का एक दल विहार में भगवान् तथागत (बुद्ध) के दर्शनों के लिए आया। उन भिक्षुओं ने तथागत का उपदेश सुना और अन्य अर्हंतों से भी मिले। उन्होंने चक्षुपाल के दर्शन करने की भी इच्छा व्यक्त की।

इसी रात को क्या हुआ कि घनघोर बर्षा हुई। बरसात की ऋतु में अनेक प्रकार के जीव-जन्तु उत्पन्न होते ही हैं। बाहर पानी होने के कारण जीव जन्तुओं के झुंड के झुंड चक्षुपाल की झोंपड़ी के पास निकल आये।

अन्धा चक्षुपाल जीव-जन्तुओं को देख तो सकता नहीं था। उसके चलने-फिरने से अनेक जीव-जन्तु पैरों के नीचे आकर, कुचलकर मर गए।

जब दर्शनार्थी भिक्षुओं का दल वहां आया तो उन्होंने चक्षुपाल के पैरों के नीचे कुचलकर मरे हुए उन जीवों को देखा। वे आपस में बात करने लगे कि देखो, चक्षुपाल ने कितने जीवों को मार डाला है।

उनमें से एक बोला, "जब इनकी आंखें ठीक थीं तब तो इन्होंने कभी इस तरह जीवहत्या नहीं की थी। किन्तु अब अंधा हो जाने के कारण उनसे पाप हुआ है। चक्षुपाल ने अधर्म किया है।"

वे इस अधर्म की बात बताने तथागत के पास गए।

उनके बताने पर तथागत ने पूछा, "क्या तुमने जीवो को पैरों तले कुचल कर मारते चक्षुपाल को अपनी आंखों से देखा है?"

"नहीं महाराज! हमने नहीं देखा।" भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

"जैसे तुमने उसे नहीं देखा, इसीतरह उसने भी उन जीव-जन्तुओं को नहीं देखा। भिक्षुओ! जो अर्हंत होते हैं, वे किसी को मानने की बात सोच ही नहीं सकते।"

भिक्षु बोले, "भगवान्! आपने उन्हें अर्हंत की पदवी और चक्षुपाल नाम दिया। फिर भी अंधे कैसे हो गए?

"भिक्षुओ! यह उनके पूर्वजन्म के बुरे काम के कारण हुआ है कर्मों का

फल भोगना ही पड़ता है।" तथागत ने कहा।

"भगवन्! पूर्व जन्म में उन्होंने ऐसा कौन-सा पाप किया था जिसके कारण वे अंधे हुए?"

तथागत ने कहना प्रारंभ किया, "भिक्षुओ! वाराणसी में एक वैद्य रहता था। वह बड़ा योग्य था। उसे रोगों की चिकित्सा करने अनेक नगरों और गांवों में जाना पड़ता था। एक बार वैद्य को एक स्त्री मिली जो लाठी टेकती हुई बड़ी कठिनाई से चल पा रही थी।

वैद्य जी ने पूछा, "अम्मां, तुम्हें क्या रोग है?"

स्त्री बोली, "मेरी आंखों की ज्योति चली गई है।"

"मैं तुम्हारी आंखें ठीक कर दूंगा।" वैद्य जी ने कहा।

"इन्हें ठीक कर दो तो फिर मुझे और क्या चाहिए।"

"ठीक कर दूं तो क्या दोगी?" वैद्य जी ने पूछा।

"यदि तुम मेरी आंखों को ठीक कर दोगे तो मैं जब तक जीती रहूंगी तुम्हारी नौकरानी बनकर रहूंगी। मेरे बेटे-बेटियां भी तेरी नौकरी बजाएंगे।"

"वैद्य ने कहा, "ठीक है।" फिर उसने आंखों में डालने की दवाई दे दी। उस दवाई से आंखें ठीक हो गईं।

महिला ने सोचा, "यदि मैं कहती हूं कि मेरी आंखें ठीक हो गईं तो हमारे परिवार को वैद्य जी की नौकरी करनी पड़ेगी। वैद्य जी पता नहीं कितना काम लें। इसलिए मैं झूठमूठ कह दूंगी कि आंखें ठीक नहीं हुई हैं।"

जब वैद्य जी ने पूछा कि अब आंखें कैसी हैं तो उसने कह दिया कि अभी तो वैसी की वैसी ही हैं। वैद्य समझ गया कि बुढ़िया मुझे धोखा देने के लिए झूठ बोल रही है। वैद्य जी ने इस बार उसकी आंखों में ऐसी दवाई डाल दी जिससे आंखें फूट गईं। इस तरह का वैद्य था यह चक्षुपाल!

"भिक्षओ! मनुष्य के बुरे कर्म जिन्हें हम पाप कहते हैं, दूसरे जन्मों में भी पीछा नहीं छोड़ते। जैसे रथ का पहिया बैल के पीछे-पीछे चलता है, वैसे ही

हमारे अच्छे-बुरे कर्म भी हमारे पीछे-पीछे चलते हैं।

"भिक्षुओं! सारे कार्यों के मूल में कोई न कोई विचार होता है। विचार

के बाद ही कार्य होता है।

"इसलिए यदि हमारे विचार ठीक नहीं होंगे तो हमारे कार्य भी ठीक नहीं होंगे।"

खोया ऊंट

एक था राजा। उसके तीन वजीर थे। वजीर थे समझदार और राजा था मूर्ख। अपनी अकल उसे थी नहीं और वजीरों की बात वह मानता नहीं था। वजीर कहते, महाराज! प्रजा दु:खी है। उसके दु:खों को दूर करना राजा का काम है। ऐसे कुछ काम कीजिए जिससे प्रजा का भला हो। पर राजा के कान पर जूं तक न रेंगती। कभी-कभी तो वह भरी सभा में बेचारे वजीरों को झिड़क देता। एक बार तो उसे उन तीनों पर गुस्सा आया तो उन्हें राज-दरवार से ही निकल जाने का हुक्म सुना दिया।

तीनों वजीर उठे और राज-दरबार से चल दिए। उन्होंने फैसला किया कि हम इस शहर में नहीं रहेंगे। ऐसे मूर्ख राजा का क्या ठिकाना कि कल को क्या कर बैठे। वे तीनों शहर छोड़कर चल पड़े।

अभी शहर से थोड़ी ही दूर गए थे कि देखते क्या है—सड़क पर बड़े-बड़े गोल से निशान बने हुए हैं। एक ने दूसरे से कहा, "अरे भई, यह तो ऊंट के पैरों के निशान हैं। देखो न, यह निशान कितना साफ दिखाई दे रहा है।"

वे अभी कुछ ही आगे बढ़े होंगे कि उन्हें एक आदमी आता दिखाई दिया। वह आदमी बहुत घबराया हुआ था। कहने लगा—"मेरा ऊंट खो गया है। आपको तो रास्ते में नहीं मिला?"

पहले वजीर ने कहा—"तुम्हारा ऊंट क्या एक टांग से लंगड़ा था?"

दूसरे वजीर ने कहा—"क्या वह एक आंख से काना भी था?"

तीसरे ने कहा—"क्या उसके बाईं ओर शहद और दाईं ओर गेहूं का बोझ लदा था?"

ऊंट का मालिक बहुत हैरान हुआ। वह मन ही मन खुश हुआ और सोचने लगा—इन आदमियों ने ऊंट जरूर देखा है। अब मैं उसे अवश्य खोज लूंगा। फिर वह वजीरों से कहने लगा—"हां, हां, आप लोग ठीक ही कह रहे हैं। वह मेरा ही ऊंट था। कहां देखा उसे आपने ? किस तरफ जा रहा था ? क्या वह अब तक काफी दूर निकल गया होगा ?"

तीनों वजीर एकसाथ बोल उठे—"हमने तुम्हारा ऊंट नहीं देखा। हम तो अभी राज-दरबार से आ रहे हैं और इस बीच हमें कोई ऊंट मिला भी नहीं।"

किन्तु उसे इनकी बात पर विश्वास कैसे होता ? अरे ऊंट की शक्ल-सूरत, ऊपर का बोझ, सभी कुछ इनको मालूम है और जनाब कहते हैं कि हमने ऊंट को देखा तक नहीं। कितनी अजीब बात है। दाल में जरूर कुछ काला है। उसे गुस्सा आ गया। कहने लगा—"अरे भले आदमियो, अगर तुमने ऊंट देखा नहीं तो फिर इतनी सारी बातें जो उसके बारे में बता दीं, वह क्या अल्ला मियां तुम्हें बता गया है। तुमने उसके बारे में जितनी बातें बताईं उससे ज्यादा तो मैं खुद भी नहीं बता सकता। मैं पूरे विश्वास के साथ कह सकता हूं कि वह तुम्हें मिला है और तुमने उसे किसीके हाथ बेच दिया है। अब भलाई इसी में है कि उसे जल्दी से जल्दी लाकर मेरे हवाले कर दो। नहीं तो तुम्हें वह मजा चखाऊंगा, वह मजा चखाऊंगा कि जिन्दगी भर याद करोगे। कहो जल्दी, क्या कहते हो ? समझ गया, तुम सीधी तरह नहीं मानोगे। चलो फिर राजा के पास। अभी तुम्हें जेल न भिजवा दिया तो क्या याद करोगे। भलाई तो इसीमें थी कि तुम सच-सच कह देते। अरे मूर्खो ! अब भी बता दो कि ऊंट कहां है ? किसको बेचा है ? कितने में बेचा है ?"

वजीर कहने लगे—"तुम्हारे जी में जो आए वह करो। हम जो कुछ कह रहे हैं वह सच हैं। एक बार नहीं दस बार कहते हैं कि हमने तुम्हारा ऊंट नहीं देखा।"

अब तो उस आदमी ने राजा के पास जाकर शिकायत कर दी। राजा ने वज़ीरों को बुला भेजा।

जब वज़ीर दरबार में हाजिर हुए तो राजा ने कहा—"सच-सच क्यों नहीं बता देते कि तुमने इसका ऊंट कहां देखा था ?"

पर वे तीनों अपनी बात पर ज्यों के त्यों अड़े रहे। "हमने इसके ऊंट को बिलकुल नहीं देखा," तीनों कहने लगे।

"अगर तुमने ऊंट को नहीं देखा तो फिर यह कैसे बता दिया कि वह लंगड़ा था, काना था और उस पर बाईं ओर शहद ओर दाईं ओर गेहूं का बोझ लदा

हुआ था। मुझे विश्वास कि तुमने ऊंट को बेच दिया है और कीमत के रुपये आपस में बांट लिये हैं। और तुम्हारी भलाई इसीमें है कि इस गरीब का ऊंट वापस दे दो, नहीं तो मैं तुम्हें अभी जेल भिजवाता हूं।" राजा ने कहा।

राजा की बात सुनकर पहले वज़ीर ने कहा—"यह सोलह आने सच है कि हममें से किसी ने ऊंट को नहीं देखा है, किन्तु हमने सड़क पर जाते समय बहुत-सी चीजें देखीं, उसीसे अन्दाज लगा लिया कि वह ऊंट ऐसा-ऐसा होगा। सड़क पर ऊंट के केवल तीन पांवों के निशान थे। इसलिए मैंने अन्दाजा लगा लिया

कि उसकी चौथी टांग अवश्य ही लंगड़ी होगी।"

दूसरे वजीर ने कहा—"महाराज! ऊंट सड़क पर चलते समय प्रायः दोनों ओर के वृक्षों के पत्तों को खाता चलता है। किन्तु मैंने देखा कि सड़क के केवल एक ओर के ही पत्ते खाए गए हैं। दूसरी ओर के पत्ते ज्यों के त्यों हैं। इसीसे मैंने अन्दाजा लगा लिया कि ऊंट एक आंख से काना होगा।

अब तीसरे वजीर का बयान भी सुन लीजिए। वह कहने लगा—"महाराज! मैंने सड़क के बाईं ओर बहुत-सी मक्खियों को भिन-भिनाते देखा और दाईं ओर गेहूं के दाने पड़े देखे। हो सकता है कि ऊंट पर लदे बोरे में सुराख हो गया हो। उसीमें से वे दाने गिरे होंगे। इसी से मैंने अन्दाजा लगाकर कह दिया कि उस पर बाईं ओर शहद तथा दाईं ओर गेहूं लदा हुआ था।"

राजा ने जब तीनों वजीरों के बयान सुने तो उसे बिश्वास हो गया कि इन्होंने ऊंट नहीं देखा है और जितनी बाते बताईं वे केवल अन्दाज लगाकर ही बता दी हैं।

अब राजा ने ऊंट के मालिक से कहा—"तीन वज़ीर सच्चे हैं। उन्होंने तुम्हारा ऊंट नहीं देखा। तुम उसे कहीं दूसरी जगह पर ढूंढो।"

राजा वजीरों की अक्लबन्दी पर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने उन्हें दोबारा अपना वजीर बना लिया और उनकी सलाह से काम करने लगा।

•••